चिन्तनशील शिक्षक लक्ष्य निर्धारित करता है, उसे हासिल करने के लिए रणनीति सोच पाता है

रश्मि पालीवाल से कमलेश चंद्र जोशी की बातचीत

कमलेश : हम शिक्षक और शिक्षक पेशेवर विकास के बारे में बातचीत करेंगे। *एनसीएफ़ 2005*, और *एनसीएफ़टीई 2009* के बाद चिन्तनशील शिक्षक मुद्दे पर विमर्श तेज़ हुआ। अच्छे शिक्षक के बारे में दस्तावेज़ों में अलग-अलग तरह की बातें लिखी गई हैं, लेकिन आम फ़ील्ड में या कम्युनिटी में सिर्फ़ ज़्यादा अंक दिलवाने और काम्पिटिशन में बच्चों को निकालने वाला अच्छा शिक्षक माना जाता है। इस सन्दर्भ में चिन्तनशील शिक्षक की अवधारणा पर कैसे सोचें?

रश्मि : इसे विरोधी ध्रुव की तरह न देखें। मतलब, एक तरफ़ सिर्फ़ अच्छे अंक मिल जाएँ, बच्चे परीक्षा में सफल हो जाएँ, उसकी चिन्ता में लगा हुआ शिक्षक, माने चिन्तित शिक्षक और चिन्तनशील शिक्षक, यह दो बिलकुल अलग चीज़ें नहीं हैं। मुझे लगता है कि बाहरी परिस्थितियाँ और हर तरह के दबाव, समाज के, प्रशासन के, या स्कूल प्रबन्धन के, ऐसी चीज़ नहीं हैं जिन्हें आसानी से दरकिनार कर सकते हैं। असल जीवन में, परिवार में, दोस्तों में, ख़ुद की संस्था में, सभी जगह एक बाहरी वस्तुनिष्ठ स्थिति होती है, जिसे हम पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर सकते। बच्चों की चिन्ता है कि उनको अच्छे अंक मिलें, इसमें अवधारणाएँ याद कराने की बात भी आती है। यह सवाल कि बाहरी परिस्थितियों से कैसे जूझें, उनके दुष्प्रभावों से कैसे बचें, और कैसे अपना ख़ुद का रास्ता बनाएँ, एक वाज़िब चिन्ता है।

मेरे लिए एक चिन्तनशील शिक्षक का अर्थ यह है– "हर बच्चे के लिए मेरा एक लक्ष्य होता है जिसे पाने के लिए मैं कोई कर्म करना चाहती हूँ। मैं उस कर्म में संलग्न हूँ, और उसके जो परिणाम हैं, उनपर सोचती हूँ। देखती हूँ कि परिणाम सन्तोषजनक हैं कि नहीं, और यदि नहीं हैं, तब मैं उसके लिए और रास्ते तलाशने और जानकारी इकट्ठा करने की कोशिश करती हूँ ताकि लक्ष्य तक बेहतर तरीक़े से पहुँच सकूँ।"

जब मैं विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार व्यवहार करती हूँ, मुझे लगता है, मैं एक चिन्तनशील शिक्षक के रूप में काम कर रही हूँ। उदाहरण के लिए, पाँचवीं कक्षा की एक बच्ची मेरे पास पढ़ने आती थी। वह काफ़ी चिन्तित थी कि उसकी स्कूली वर्कबुक में उसे चार अंकों का गुणा-भाग कराया जा रहा है। यह गुणा-भाग उससे बन नहीं रहा, और ग़लतियाँ होती हैं। वह चाहती थी कि मैं उसे सिखा दूँ। बच्ची को अभी 122 जैसे संख्यांक लिखना भी नहीं आता। ऐसे में उसके साथ मौखिक रूप से, मानसिक रूप से कोई भी कार्य करना सही नहीं था। जब उसे इतना भी नहीं आता है तब इतनी बड़ी संख्याओं का गुणा-भाग सिखाना बहुत बेमानी था। वह साफ़तौर पर सिर्फ़ स्कूल की परीक्षा को पास करने और बाहरी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए था।

इसमें मैंने एक द्वन्द्व पाया। सोचा, पहले इसकी पूरी बुनियादी अवधारणाओं को स्पष्ट करूँ फिर गुणा भाग तक लाऊँ। पर अगर मैं ऐसा करूँ, तब क्या बच्ची की अभिप्रेरणा; उसका इस वक़्त लक्ष्य; उसके दिमाग़ की चिन्ता; वह जो हासिल करना चाहती है; वह जो मदद माँग रही है; क्या वह देने की मेरी संवेदना और तैयारी

है? अभी वह मदद माँग रही है कि कल मेरी पिटाई होगी, मैं जलील होऊँगी, शर्मिन्दा होऊँगी, प्लीज़ मेरी मदद करो। उसका पूरा दिमाग़ उसमें लगा हुआ है। अब यदि मैं, उसके लिए तीली-बण्डल, पीले वाले स्थानीय मान कार्ड, आदि लाऊँगी, तब वह उसमें नहीं जुड़ पाएगी। चिन्तनशील शिक्षक के रूप में मेरा फ़र्ज़ यह सोचना बनता है कि इस वक़्त किसका क्या लक्ष्य है; सीखने वाले और मेरे क्या लक्ष्य हैं; और इनमें क्या रणनीति अपनानी चाहिए?

मेरे लिए एक चिन्तनशील शिक्षक का अर्थ यह है— "हर बच्चे के लिए मेरा एक लक्ष्य होता है जिसे पाने के लिए मैं कोई कर्म करना चाहती हूँ। मैं उस कर्म में संलग्न हूँ, और उसके जो परिणाम हैं, उनपर सोचती हूँ। देखती हूँ कि परिणाम सन्तोषजनक हैं कि नहीं, और यदि नहीं हैं, तब मैं उसके लिए और रास्ते तलाशने और जानकारी इकट्ठा करने की कोशिश करती हूँ ताकि लक्ष्य तक बेहतर तरीक़े से पहुँच सकूँ।"

यदि शिक्षक के पास एक तरह का ज्ञान है वह एक तरह की रणनीति अपनाएगा, और यदि उसके ज्ञान में इज़ाफ़ा हो, बदलाव आए, तभी उसकी रणनीति अलग बन सकती है। इसलिए शिक्षक के ज्ञान के मुद्दे को देखने की ज़रूरत है।

कमलेश : शिक्षक के ज्ञान से आपका क्या आशय है? कुछ उदाहरण दें। शिक्षक कहते हैं कि कोई नई विधि बताएँ। क्या शिक्षक के ज्ञान में यही शामिल है?

रश्मि : बात सिर्फ़ विधि की नहीं है। शिक्षक प्रशिक्षणों में अकसर एक की बजाय दूसरी विधि से शिक्षकों को वाक़िफ़ करा देते हैं। जब पाठ्यपुस्तकों में विधि और पाठ्यक्रम का स्तर बदला जाता है, तब शिक्षक के पास एक नई विधि और अलग पाठ्यक्रम पहुँच जाते हैं। अलग प्रकार के पाठ्यक्रम और विधि के बावजूद हमने देखा है कि शिक्षक कक्षा में किसी और चीज़ के आधार पर अपने काम को संचालित करता है। कई शोध भी यह दिखाते हैं कि शिक्षक कक्षा में पाठ्यपुस्तक में लिखी सामग्री, प्रशिक्षण में जो सिखाया गया था, आदि का उतना इस्तेमाल नहीं करते जितना अपने मन में सँजोए ज्ञान, छवियों और प्रतिबिम्बों का। अकेले कक्षा में बच्चों के सामने वे अपने अन्दर के सारे संसाधन जो संचित और गठित हो चुके हैं, उनसे ड्रॉ करते हैं। यह ज्ञान किन-किन चीज़ों के बारे में होता है? सबसे पहले तो यह कि बच्चे की रुचि किसके बारे में है। हो सकता है एक शिक्षक की बच्चों की रुचि को लेकर कुछ छवियाँ हों, या फिर उसे यही लगता हो कि बच्चे की रुचि का कोई रोल नहीं है। शिक्षा में मुझे जो पढ़ाना है वही पढ़ने की ज़रूरत है। इसी तरह से यह पहलू कि बच्चे की क्षमता और स्तर को लेकर उसका क्या ज्ञान है, और वह इसको कितनी तवज्जो देता है।

फिर यह बात कि वह क्या सिखाना चाहता है। यदि वह चार अंक का भाग सिखाना चाहता है, तब क्या उसको ऐसे भाग की विषयवस्तु का ज्ञान है। यह ज्ञान उसके पास होना चाहिए। साथ ही यह भी जानना कि चार अंक की संख्याओं का भाग कैसे सिखाएँ। भाग के तरीक़े के बारे में उसका ज्ञान क्या पुराना निर्मित ज्ञान है या वह उसके अपने अनुभव से बना है?

एनसीईआरटी की नई किताबों में भाग करने के बहुत अलग तरीक़े पेश किए गए हैं। एक स्कूल में काम करने के दौरान मैंने देखा कि शिक्षिका पुरानी विधि से भाग करना सिखा रही थीं। मुझे आश्चर्य हुआ कि वह क्यों एनसीईआरटी की किताब में दी विधि का इस्तेमाल नहीं कर रहीं, और पुरानी विधि से सिखा रही हैं। पूछने पर उन्होंने कहा कि उन्होंने किताब में विधि नहीं देखी, क्योंकि उन्हें पहले से मालूम है कि भाग करना क्या होता है। मैंने कहा, आपने प्रशिक्षण में यह चीज़ देखी ही होगी। उन्होंने कहा, प्रशिक्षण में

कुछ बताया गया था, पर उस सबकी क्या ज़रूरत है। उनकी समझ है कि ज़रूरत का ज्ञान उनके पास है, अत: बाक़ी वह बिलकुल नज़रन्दाज़ कर रही थीं। उनके मन में कोई दुविधा या चिन्ता नहीं थी। पाठ्यपुस्तक और प्रशिक्षण की बातों को वह न तो देख रही हैं न उसका हवाला दे रही हैं, क्योंकि उन्हें इनकी ज़रूरत नहीं लगती। यह उनकी बेरुख़ी नहीं है। अकसर हम इसे शिक्षिका का आलसीपन या उनकी अरुचि मानते हैं। यह अरुचि नहीं है, क्योंकि वह बेहद रुचि से, अपने तरीक़े से भाग सिखा रही थीं। दाएँ से ऐसा करो, फिर यह माइनस करो, फिर यहाँ शून्य डालो, यहाँ कट-पिट डालो, भाग सिखाने का यही तरीक़ा है। और यह उनके ज्ञान के साथ काम कर रहा है। वह किसी चीज़ की अवहेलना नहीं कर रहीं, अपने ज्ञान की अनुपालना कर रही हैं। हम यह नज़रन्दाज़ कर देते हैं कि शिक्षक अपने ज्ञान के इन तमाम स्रोतों का बेहद शिद्दत से उपयोग करते हैं।

इसी तरह, सीखने के चरण क्या होंगे; पहले क्या होगा; क्या निर्देश दिए जाएँगे; और बच्चे के साथ क्या प्रयास किया जाएगा; इसमें बच्चों का संज्ञान कैसे काम करता है; इसके बारे में उनका ज्ञान है। उन्हें मालूम है कि बच्चों के दिमाग़ में कोई बात कैसे उतारी जाती है, और सीखना क्या होता है। वह दिमाग़ में उतरना होता है, या कुछ और। माने, सीखने के बारे में उनका अपना ज्ञान है।

इसी तरह से सीखने में बच्चों की अभिप्रेरणा है या नहीं; इसको कितना महत्त्व देना है; और अभिप्रेरणा पैदा करने के तरीक़ों के बारे में उनका ज्ञान क्या है। यह ज्ञान कि तुलना करेंगे, तब अच्छे अंक लाएँगे। एक की तारीफ़ और एक को कमज़ोर कहने से अभिप्रेरणा बनती है। इससे वह कोशिश करता है। और अगर फिर भी वह कोशिश नहीं कर रहा, इसका मतलब यह है कि इसके घर में ऐसा माहौल नहीं है। कोई ध्यान नहीं देता दिमाग़ ही ख़राब है, वग़ैरह-वग़ैरह। माने, बच्चे का संज्ञान और बच्चे की अभिप्रेरणा कैसे संचालित होती है, इसके बारे में उनका अपना ज्ञान है। यह सिर्फ़ रूढ़ धारणाएँ नहीं हैं, जो बेतरतीब इकट्ठी हो गई हैं। यह सब चीज़ें एक बहुत सोचे-समझे और व्यवस्थित तरीक़े से उनके दिमाग़ में हैं, और काम करती हैं। साथ ही, पाँचवीं कक्षा के बच्चे को चार अंक की संख्या का भाग करना सिखाने का उद्देश्य; शिक्षा का लक्ष्य क्या है; पाठ्यक्रम का लक्ष्य क्या है; इस वक़्त के पाठ्यक्रम में यह क्यों है; आगे के पाठ्यक्रम में क्या है; और मैं आज नहीं सिखाऊँगी तो कल के पाठ्यक्रम में क्या दिक़्क़त आएगी; इस सबका उसे ज्ञान है। उसे पाठ्यक्रम का ज्ञान है। पाठ्यक्रम शिक्षा का कौन-सा लक्ष्य पूरा कर रहा है; जीवन में क्या काम आएगा; इस सबके बारे में उसका अपना ज्ञान है। यानी, इन सब बिन्दुओं पर उसकी एक सोची-समझी समझ है, जो उसको संचालित करती है। जब हम सिर्फ़ पाठ्यपुस्तक बदलकर उसके हाथ में थमा देते हैं, या किसी तीन दिन की कार्यशाला में कुछ अनुभव देकर उसे रोमांचित कर देते हैं, उसे उस समय मज़ा आ जाता है, और मज़ा लेकर वह घर चला जाता है। लेकिन जब वह कक्षा में होता है, इन सारे बिन्दुओं पर, जो उसने अपने अनुभव से सीखा है, उससे संयोजित ज्ञान ही उसको संचालित करता है। इसीलिए शिक्षक की ज्ञान की धारणाओं को बदलने में हम थोड़ा हताश महसूस करते हैं कि हमने इतना प्रयास किया, पर नहीं हुआ। हम उसको आसान आँकते हैं, यह हमारा ज्ञान है। शायद हम यह समझते हैं कि उसे इस जानकारी की कमी है कि भाग कैसे सिखाना है, और यह हमने उसे बता दिया। जैसे मुझे अभी पता नहीं है कि पीडीएफ़ फ़ाइल कैसे खोलूँ, और आपने मुझे तरीक़ा बताया और मैंने खोल ली। शिक्षा व शिक्षण को लेकर पूरी दृष्टि और संयोजित ज्ञान को सम्बोधित करने की ज़रूरत संचालित करती है।

कमलेश : हम कंस्ट्रक्टिव अप्रोच की बात करते हैं, पर इसमें और शिक्षक के ज्ञान में द्वन्द्व

है। हम कहते हैं कि ऐसे करो, लेकिन उसको पता है कि वैसे करना है। बदलाव कैसे हो?

रश्मि : चिन्तनशील शिक्षक की अवधारणा इसी वास्तविकता के सन्दर्भ में है कि शिक्षक अज्ञानी नहीं है। ऐसा नहीं कि हमने उसे ज्ञान दे दिया, और अब वह हमारा ज्ञान लेकर कार्य करेगा। जब हम शिक्षक के ज्ञान को स्वीकार करने लगेंगे, तब यह बात आएगी कि उसकी चिन्तनशील प्रक्रिया में क्या सहयोग करें। क्या हम जानते हैं कि वह क्या चिन्तन करता है; वह किस प्रकार का चिन्तन कर रहा है; और हम उसकी चिन्तन प्रक्रिया में कैसे सहभागी होकर उसे और समृद्ध व समर्थित कर सकते हैं? फिर यह हमें एक नई भूमिका देता है।

कमलेश : शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी सारी संस्थाएँ काम करती हैं। उनके अलग-अलग तरह के पैकेज कुछ तरीक़े बताते हैं कि इसको इस्तेमाल करो तो गणित आ जाएगा, या इससे अँग्रेज़ी आ जाएगी। इनमें यह बात नहीं होती कि शिक्षक इस बारे में क्या विचार कर रहे हैं, तब शिक्षक को चिन्तनशील बनाने की प्रक्रिया को कैसे समृद्ध किया जाए? दूसरा हम स्कूलों में जाते हैं, वहाँ कैसे काम करें? एनसीईआरटी की किताबों को आए हुए 12-15 साल तो हो ही गए होंगे, लेकिन उनके सही से इस्तेमाल को लेकर आज भी सन्देह है। दो-तीन दिन में प्रशिक्षित कर दें, ऐसा नहीं है। काफ़ी लम्बा और सोच-विचार वाला काम है, इसे कैसे करना चाहिए?

शिक्षक कक्षा में पाठ्यपुस्तक में लिखी सामग्री, प्रशिक्षण में जो सिखाया गया था, आदि का उतना इस्तेमाल नहीं करते जितना अपने मन में सँजोए ज्ञान, छवियों और प्रतिबिम्बों का।

रश्मि : इस सवाल का जवाब आप ज़्यादा अच्छे से दे सकते हैं। आप इस पूरे प्रयास में भिड़े हुए हैं। आपका सृजन समूह शिक्षकों का मंच है। इसमें आपने इस सवाल का कोई जवाब ज़रूर पाया होगा। मैं आपके नोटिस और साझा किए शिक्षकों की डायरी के पन्ने पढ़ती हूँ। इनमें इन बातों का जवाब निकलता है। इस पूरी सृजन, प्रक्रिया की, कल्पना करते हुए मैं सोचती हूँ कि हम इसे एक सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया के रूप में देखें, सिर्फ़ शिक्षा में नवाचार की प्रक्रिया या किसी चीज़ के क्रियान्वयन के रूप में नहीं। और, निश्चित रूप से, यह व्यवस्था में बदलाव भी नहीं है क्योंकि व्यवस्था पहले से बनी हुई है, और उसको हम बहुत ज़्यादा बदल नहीं पा रहे हैं। बदल भी नहीं सकते हैं क्योंकि उसकी बहुत तरह की जवाबदारी पूरी करनी होती है। माने, यह व्यवस्थागत बदलाव नहीं है। बल्कि यह सांस्कृतिक विकास का एक सिलसिला है। इसमें शिक्षक किसी सरकारी आदेश की वजह से नहीं, बल्कि अपनी स्वेच्छा, अपनी रुचि से एक प्रक्रिया में जुड़ते हैं। वह अपने जैसे विचार, रुचि और अभिप्रेरणा रखने वाले दूसरे शिक्षक साथियों या शिक्षा में लगे हुए कार्यकर्ताओं के एक समूह का हिस्सा बन जाते हैं। वे साथ में पढ़ते हैं, चर्चा करते हैं, नए तरीक़ों को देखते हैं, अपने अनुभव सुनाते हैं, और दूसरों के अनुभव सुनते हैं। एक तरह का सामूहिक सम्प्रदाय गठित होने लगता है। मुख्य बात यह है कि इसमें सब बराबर हैं, सब स्वतंत्र हैं, कितना भाग लेना है, कैसे भाग लेना है, कब आना है, कब नहीं, यह सब उनकी इच्छा, सुविधा और तैयारी पर है। यह भागीदारी का एक बहुत अलग सिलसिला है, जो व्यवस्था के अन्दर नहीं हो पाता। व्यवस्था में उनकी जवाबदारियाँ हैं, वह किसी और के मातहत हैं। व्यवस्था के अनुशासन, उसकी अपेक्षा को पूरा करना उनकी ज़िम्मेदारी है। ऐसे में, जहाँ वह ग़ैर-बराबरी पर हैं, उसकी बात अलग हो जाती है।

अपने आज़ाद देश का प्रशासन, ज़्यादा बराबरी के साथ कैसे काम करें, यह प्रश्न आज भी है। माने, बराबरी बिलकुल नहीं दिखती, और

शिक्षकों के काम की जगह पायदान में सबसे नीचे है। इसलिए यह समूह होना महत्त्वपूर्ण है। यहाँ आज़ादी है, और सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सदस्य एक व्यक्तिगत जुड़ाव, भावनात्मक स्तर पर एक समर्थन, एक पोषण महसूस करते हैं। यह भावनात्मक समर्थन आपको व्यवस्था के अन्दर, अपने स्कूल के अन्दर, प्रशासन के अन्दर महसूस नहीं होता, जोकि दरअसल होना चाहिए।

किसी सामूहिक लक्ष्य के लिए हम मिलकर और मन से कोशिश करें, यह भाव तब तक नहीं बन पाता जब तक कि स्कूल स्तर पर, स्कूल लीडरशिप का कोई उद्देश्य, प्रेरणा न हो। यह न होने पर शिक्षक का अपने विकास के बारे में बहुत आगे बढ़ पाना काफ़ी नामुमकिन काम हो जाता है। हम कैसे इस गाँठ को तोड़ें। सबको अभिप्रेरित करके साथ में कुछ हासिल करने के लिए प्रयासरत होना ज़रूरी है। नई-नई पाठ्यपुस्तकें बन गईं, नए तरीक़े आ गए, इतनी सामग्रियाँ देश में शिक्षकों के बीच पहुँचाई जाती हैं, लेकिन वह इसका उपयोग करने के लिए कैसे प्रयास करेंगे! वह प्रयास इस भावनात्मक जुड़ाव के साथ एक लक्ष्य की साझेदारी, बराबरी, स्वतंत्रता जैसी भावनाओं और प्रक्रियाओं के साथ ही सुगम हो सकता है। आपने कहा था कि शिक्षक का अपना रचनात्मक प्रयास, स्वायत्त तरीक़े से लिए गए उसके निर्णय और उसकी अपनी रचनात्मकता, ग़ायब लगती है। जैसे, किसी शिक्षिका ने कुछ कविताएँ इकट्ठी कीं। वह उन्हें आपके पास लेकर आए कि मैंने बच्चों के लिए लिखी अपनी कविताएँ इकट्ठी कर ली हैं, और मैं इनपर गतिविधियाँ बनाकर एक किताब निकालना चाहती हूँ। किसी ने बच्चों के किसी काम पर एक वीडियो बनाया है और वह उसको दिखाना चाहता है। यह सब शिक्षकों की स्वायत्तता का संकेत है कि वह अपने अन्दर की किसी अभिप्रेरणा से, अपने अन्दर के किसी ज्ञान और सोच से क्रियाशील हुए। उन्होंने कुछ किया, उसमें उनको सन्तोष मिला, और वह उसकी सराहना व स्वीकृति भी चाहते हैं क्योंकि इससे मनोबल बढ़ता है, और आप आगे के लिए प्रयास करते हैं। सोचने की बात है कि हम कितना तैयार हैं इसके लिए! क्या हमारे अन्दर यह छवि है कि हम कुछ चीज़ों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करवाएँ, या उन्होंने जो किया है उसपर आगे बढ़ें, क्योंकि मैंने देखा कि चाहे बच्चे हों या बड़े, वह दूसरों का सुनना, दूसरों का पढ़ना इतना नहीं चाहते जितना अपना सुनाना या बताना चाहते हैं। बच्चे भी और बड़े भी किसी और की बात को ध्यान से पढ़ें, सुनें, यह बहुत मुश्किल से होता है। जब होता है, बहुत अच्छी बात है। अगर सिर्फ़ दूसरों का बताया, लिखा, सुनाया हुआ, हम सुनें, समझें, और ऐसा दबाव हमपर हो, तब शायद हमारे अन्दर की जो एक स्वस्थ रचनात्मकता है वह अतृप्त रह जाती है। और उसमें फिर हमारी क्रियाशील होने की जो गाँठें हैं वह पूरी तरह से नहीं खुलतीं है।

कमलेश : शिक्षक की रचनात्मकता को ध्यान में रखते हुए हम उनके साथ कैसे काम करें, और कैसे उनकी आगे बढ़ने में मदद करें?

रश्मि : कुछ दोहरा लेते हैं। मेरे ख़्याल से चिन्तनशील शिक्षक का अपना एक लक्ष्य होना चाहिए, जिसके साथ वो ख़ुद आइडेंटिफ़ाई करता हो। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ कर्म करना, अपने लक्ष्य के बारे में सोचते हुए लक्ष्य और कर्म के फल पर विचार करना, कि क्या मिल रहा है, क्यों नहीं मिल पा रहा, या कितना मिल रहा है, कितना अच्छा मिला। जैसे, आपके मंच पर किसी शिक्षक का कहना था कि मेरी कक्षा के कमज़ोर बच्चों ने भी अच्छा प्रयास किया। उन्होंने अपना लक्ष्य देखा कि क्या हुआ, और उनको सन्तोष हुआ। कई कहते हैं अच्छा नहीं लगा, कुछ और करने की ज़रूरत है। माने, लक्ष्य, लक्ष्य के लिए काम, कर्म के प्रभाव पर चिन्तन, और उसके लिए फिर और नए संसाधन ढूँढ़ना, नई रणनीतियाँ ईजाद करके फिर से कर्म में संलग्न होना, उसके प्रभावों का आकलन

करना, यह लगातार चलने वाली क्रिया है।

जब शिक्षक आमतौर पर मिलते हैं, बात करते हैं। यदि उनका लक्ष्य है कि बच्चों को यह पढ़ना आ जाना चाहिए, तब उनकी बातचीत इस रूप में होती है कि इन बच्चों को कुछ आता ही नहीं है। वह स्कूल ही नहीं आते हैं, उनकी पढ़ने में रुचि ही नहीं है।

बच्चे का संज्ञान और बच्चे की अभिप्रेरणा कैसे संचालित होती है, इसके बारे में उनका अपना ज्ञान है। यह सिर्फ़ रूढ़ धारणाएँ नहीं हैं, जो बेतरतीब इकट्ठी हो गई हैं। यह सब चीज़ें एक बहुत सोचे-समझे और व्यवस्थित तरीक़े से उनके दिमाग़ में हैं, और काम भी करती हैं।

और सारे शिक्षक हाँ में हाँ मिलाते हुए वैसी ही बातें करने लगते हैं। इस प्रकार एक तरह से अपनी लाचारी, अपनी मजबूरी और अपनी अनहोनी निकाल दी। यह चिन्तनशील शिक्षक नहीं है, क्योंकि उसने अपने लक्ष्य को ज़्यादा प्रभावी बनाने के लिए अपने स्तर पर यह विचार नहीं किया कि वो कर्म में क्या बदलाव कर सकता है। इसके उलट, वह सोचता है कि वह कुछ कर ही नहीं सकता। जो था, जितना था उसने कर दिया, और अब आगे उसके हाथ की बात ही नहीं है, अब किसी और की ज़िम्मेदारी है, इसलिए यह चिन्तनशील शिक्षक नहीं हुआ।

कमलेश : हमारे मंच पर शिक्षक बहुत-सी सामग्री भेजते रहते हैं। क्या यह सामग्री भी संवाद का आधार बन सकती है; कैसे बन सकती है?

रश्मि : अगर सबके अनुभव और तरीक़े लगभग एक जैसे ही हैं, और उन्हीं की शेयरिंग हो रही हो, तब चिन्तनशीलता में वृद्धि नहीं होती, बल्कि वही एक रूढ़ि, परिपाटी पुख़्ता होती जाती है। अनुभवों और प्रयासों में विविधता, चिन्तनशीलता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। विविधता आने से आगे के विकास का रास्ता खुलता है, क्योंकि अब दो बराबर के शिक्षक अपने वास्तविक अनुभवों को शिद्दत और उत्साह के साथ साझा कर रहे हैं। कोई उनसे करवा नहीं रहा है। माने, जब आपने मुझसे यह साझा किया, काफ़ी सम्भव है कि मैं कहीं यह सोचने लगूँ कि क्या मैं ऐसा करती हूँ; क्या मेरी कक्षा में भी मैंने ऐसा होता देखा है; कुछ-न-कुछ कीड़ा कुलबुलाता है मन के अन्दर। यही जब दूसरों के अनुभव हमसे अलग हैं वह सुनने-जानने से एक नयापन, एक नई दृष्टि मिलती है।

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन जैसी संस्था का काम, सृजन समूह की प्रक्रिया में होने वाले प्रयास, विविधता की सम्भावनाओं को बढ़ाते हैं। मतलब, जब ऊपर से कोई कहे कि आपको कक्षा में तीली-बण्डल से सिखाना है, बच्चे को बोलने देना है, यह सही तरीक़ा है। किसी के द्वारा तरीक़ा बताया जाना अलग बात है, पर जब वह बात किसी साथी के अनुभव से सुनने को मिलती है, तब वह मेरे लिए अलग मायने रखती है। चाहे वह बात मुझे करनी नहीं है, मेरे ऊपर करने का कोई दबाव भी नहीं है। लेकिन आपका उत्साह और ख़ुशी देखकर जब संज्ञानात्मक स्तर पर ही नहीं बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी मेरे अन्दर कुछ संचार होता है, और आपकी ख़ुशी मुझे कहीं छूती है। मैं सांस्कृतिक विकास की बात फिर से दोहरा दूँगी कि यह एक सांस्कृतिक आदान-प्रदान है। यह कुछ क्रियान्वयन का आदान-प्रदान नहीं है, यह व्यवस्था में परिवर्तन भी नहीं है।

किसी की ख़ुशी देखकर मुझे कुछ महसूस हुआ, इसमें कोई व्यवस्था नहीं बदली। वह वैसी की वैसी है। लेकिन मुझे कुछ फ़र्क़ पड़ा। एक उदाहरण देती हूँ, मैंने बहुत पहले मारग्रेट के टी की किताब *द ओपन क्लासरूम* पढ़ी। उसमें वह लिखती हैं कि जो बच्चे उनके सेंटर पर इकट्ठे होते थे उनको वह खेलने देती

थीं। इसी तरह की बात मैंने ए एस नील की *समरहिल* में भी पढ़ी कि बच्चे जितना चाहे खेल सकते थे। जहाँ चाहे दौड़ें, चाहे जो करें, उनपर कोई दबाव नहीं था। जब बच्चे खेलकर थक जाएँ, बहुत ऊब जाएँ, और आकर कहें कि हमें कुछ पढ़ा दो, तब मैं उनको पढ़ाता था। और वह बहुत प्रोडक्टिव इंटरेक्शन होता था। बच्चे काफ़ी तेज़ गति से उस बात में अपना दिमाग़ लगाते थे, सीखते थे। चाहे वह समय काल छोटा था। पूरे 2 घण्टे ज़बरदस्ती उनको अनुशासन में रखकर बैठाना जबकि उनका दिमाग़ और शरीर कहीं-कहीं भाग रहा है। उसकी बजाय उस थोड़े समय में लगाया गया ध्यान ज़्यादा सकारात्मक होता था। यह मैंने पढ़ लिया था, लेकिन तब तक मैंने ख़ुद बच्चों के साथ ऐसा काम नहीं किया था। अभी कुछ महीने पहले मेरे घर पर पढ़ने के लिए कुछ बच्चे आने लगे थे। वह मेरे बरामदे, आँगन की दीवार के ऊपर कूद-फाँद, पेड़ पर चढ़ना, साइकिल लेकर दौड़ना, झूले पर झूलना करते थे। मैं इतना घबराती थी कि उनको पढ़ना-लिखना कब सिखाऊँगी! मेरे अन्दर यह तनाव था। तब मुझे वह बात याद आई। साहित्य के स्तर पर कभी कुछ पढ़ा हो, आपको ऐसे मौक़े पर याद आता है। मार्गरेट के अनुभव में, नील के अनुभव में यह बात सही साबित हुई थी, तब शायद मेरे अनुभव में भी सत्य साबित हो। मैंने अपने ऊपर कंट्रोल करने की कोशिश की, मैं बच्चों को नियंत्रित न करूँ, उनकी ऊर्जा खेल में लग जाने दूँ, और इन्तज़ार करूँ कि थोड़ी देर बाद आकर वह यह काम करेंगे। और वास्तव में ऐसा हुआ, क्योंकि असल में वे सत्य अनुभव थे जो मैंने पढ़े थे।

इसलिए दूसरों के सत्य अनुभव पूरी भावनात्मक लगन के साथ सुनना कभी-न-कभी आपके काम आ जाता है। जब आप ऐसे मौक़े पर पहुँचते हो, और चिन्तन कर रहे होते हो कि मैं क्या करूँ, इस वक़्त अपना लक्ष्य कैसे प्राप्त करूँ, तब आपको दूसरों के अनुभव का जानना काम आ जाता है।

कमलेश : यह बात काफ़ी सुन्दर है। इस तरह का साहित्य, जिसमें सच्चे अनुभव हैं, शिक्षक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हमारे समूह में भी लोग ऐसे अनुभव लिखते हैं, और यह काफ़ी मददगार होता है।

रश्मि : पर पता नहीं चलेगा कि कोई अनुभव कब उनके काम आया। वे तुरन्त उसका परिणाम दिखाएँ ऐसी अपेक्षा नहीं है, पर सतत पढ़ने और अपने अनुभव जगत को विस्तृत करने की सम्भावना बनी रहेगी।

कमलेश : शिक्षकों व स्कूलों के साथ काम करने का आपका लम्बा अनुभव है, इस बारे में बताएँ। यह भी कि आज के सन्दर्भ में इसे कैसे देखें?

रश्मि : हम शिक्षक विकास के सन्दर्भ में बात कर रहे हैं, उसके सन्दर्भ में ही मैं अपने काम को फ़्रेम करने की कोशिश करूँ। एकलव्य की सफलता-असफलता अब पुरानी बातें हो गई हैं। वह पाठ्यक्रम सरकारी स्कूलों में सरकार की अनुमति से बहुत सालों तक चला, और 2002 में ख़त्म हुआ। उसके बाद हमने आदेश के माध्यम से शिक्षकों के साथ काम करना एक तरह से रोका, और शिक्षकों के मंच बनाने व उनके साथ अपना वार्तालाप जारी रखने का प्रयास किया। वह इतिहास की बात है। जब हमने पाठ्यक्रम बनाए थे, और सरकार से उनके लिए अनुमति माँगी थी, उसमें हम शिक्षक को और उसकी भूमिका को देख रहे थे। माने, हम ऐसे किसी भी शैक्षिक नवाचार, किसी भी तरह के नए बदलाव के लिए शिक्षक की केन्द्रीय भूमिका का किस रूप में विकास कर पाए, उसको प्रमाणित कर पाए, और क्या उसको फैलाया जा सकता है।

व्यवस्था के स्तर पर सबसे बड़ा सवाल होता है कि कोई भी अच्छी चीज़ शुरू हो गई, लेकिन यह सब जगह फैलेगी कैसे! पाठ्यक्रम में बदलाव, विज्ञान क्या है, विज्ञान शिक्षा कैसी होनी चाहिए, या समाज विज्ञान का स्वरूप क्या है, उसकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए, इत्यादि

मुद्दों को लेकर हमारी पेशकश थी। यह शिक्षकों की पेशकश नहीं थी। लेकिन हमारी पेशकश को स्वीकार किया गया और इसके बाद से शिक्षक हमारे साथ बराबर के भागीदार थे। जो भी फ़ैसले किए गए, वह उनकी भागीदारी के साथ, उनके साथ वार्तालाप, बहस, चर्चा, प्रयोग करके किए गए। सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में हमने ओपन बुक परीक्षा ली थी, मुझे याद है। जैसे विज्ञान कार्यक्रम में ओपन बुक है, वैसे सामाजिक विज्ञान में भी हो सकता है क्या? सामाजिक विज्ञान में काफ़ी ज़्यादा जानकारियाँ किताब में दी हुई होती हैं। अगर ओपन बुक करेंगे, बच्चा वहीं से जानकारी टीपकर लिख देगा। विज्ञान में वह सम्भव नहीं था। यह एक दुविधा थी, एक प्रश्न भी था। इस प्रश्न का निदान शिक्षकों के साथ हो, इसके लिए गोष्ठी भी की गई। शिक्षा के उद्देश्य / लक्ष्य, समाज विज्ञान का स्वरूप, समाज विज्ञान की अवधारणा क्या है; समाज विज्ञान के मूलभूत कौशल क्या हैं; हमारा लक्ष्य क्या है; हम क्या जानकारियाँ सिखाना चाहते हैं; किन अवधारणाओं, किन कौशलों का विकास करना चाहते हैं; जितने बिन्दु शिक्षक के ज्ञान के सन्दर्भ में पहले गिनाए थे, लगभग सभी बिन्दुओं पर हमारे बीच बहस हुई। एक सामूहिक निर्णय हुआ कि इसमें भी ओपन बुक करके देखेंगे। इसी तरह से कई अध्याय थे। वह अध्याय रखे जाएँ या न रखे जाएँ, इसपर चर्चा हुई। भारत में जाति व्यवस्था के विकास पर हमारा अध्याय था। जाति व्यवस्था को लेकर एक प्रश्न था कि अपने ख़ुद के गाँव में आपको कैसा अनुभव होता है। किताब का ट्रायल एडिशन छप गया था। ट्रेनिंग में शिक्षकों ने कहा कि अमुक प्रश्न अपनी कक्षा में नहीं करेंगे। छपी हुई किताब लेकर कक्षा में बैठे थे, और शिक्षकों ने मना कर दिया कि वे कक्षा में ऐसे प्रश्न नहीं करेंगे। हमने काला पेन लेकर, छपी हुई सभी प्रतियों में उस प्रश्न को काला कर दिया। किसी एक चीज़ पर हमारी ही बात मानी जाए या यही ठीक है कि हमको पता है, इस रुख़ से काफ़ी बचा गया। हर एक बिन्दु पर शिक्षकों के साथ एक बराबर की भागीदारी के साथ काम करने की कोशिश की गई। सबसे महत्त्वपूर्ण था प्रश्न पत्र का निर्धारण कैसे होगा; प्रश्न पत्र में, प्रश्न किस आधार पर रखे जाएँगे; और बच्चों का आकलन किस प्रकार से होगा। यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि बाक़ी जगहों पर शिक्षक समूह बोर्ड के प्रश्न और मूल्यांकन तय करने में इतना स्वायत्त नहीं होता। लेकिन यहाँ पर शिक्षकों का वही समूह प्रश्न पत्र बना रहा है जिसको रूबरू ज्ञान है कि हमने क्या पढ़ाया। ऐसे प्रश्न कैसे रख दें जो हमने पढ़ाए ही नहीं! उनका मूल्यांकन करने का फ़ायदा नहीं क्योंकि हमने बच्चों को उसका अनुभव ही नहीं दिया। यह निर्णय शिक्षकों की स्वायत्तता के आधार पर लिया गया क्योंकि उनकी ज़िम्मेदारी है कि उन्होंने जो पढ़ाया उसी का मूल्यांकन करेंगे। आप कह सकते हैं कि शिक्षक बेईमानी कर सकते हैं, उनपर भरोसा कैसे किया जाए। कौन चेक करेगा कि शिक्षक भरोसे लायक़ है कि नहीं। शिक्षक आपस में एक दूसरे को चेक कर सकते हैं। जब 25 शिक्षक आपस में बैठकर यह तय कर रहे हैं कि यह हमने पढ़ाया कि नहीं; यह प्रश्न रखे जाएँ कि नहीं; और कोई कह दे कि हमने इस कुशलता पर काम ही नहीं किया, तब बाक़ी शिक्षक उसको डाँट देते थे कि कैसे नहीं किया तुमने। तुमने फलाने पाठ में वह नहीं किया, हमने किया था। चलो, कम वेट रख देंगे लेकिन प्रश्न तो रहेगा, क्योंकि बाक़ी सबने किया है। अगली बार तुम भी करना। यानी, शिक्षकों की

किसी सामूहिक लक्ष्य के लिए हम मिलकर और मन से कोशिश करें, यह भाव तब तक नहीं बन पाता जब तक कि स्कूल स्तर पर, स्कूल लीडरशिप का कोई उद्देश्य, प्रेरणा न हो। यह न होने पर शिक्षक का अपने विकास के बारे में बहुत आगे बढ़ पाना काफ़ी नामुमकिन काम हो जाता है।

आपस की चेकिंग, काउंटर चेकिंग, उससे चीज़ों का निर्धारण, यह हम क्रियान्वित कर पाए।

मैं समझती हूँ कि यही प्रयोग अगर अलग-अलग ज़िलों में वहाँ के शिक्षक समूह को ऐसी ही स्वायत्तता और जवाबदारी देकर किया जाता, तब हर क्षेत्र / ज़िले में शिक्षकों के ऐसे अनुभव वाले समूह बनते जो ज़िम्मेदारी अपने कन्धों पर लेने को तैयार होते। और ज़िम्मेदारी लेने का मतलब क्या है इसको भी करके सीख चुके होते, ख़ुद अपना ज्ञान बना चुके होते। फिर वह दूसरों को भी डाँट-डपटकर, समझा-बुझाकर करने के लिए प्रेरित करते। माने, यह सम्भावना कोई सातवें आसमान की बात नहीं है, यह इस नर्मदा किनारे हुई है। और एकलव्य के काम से शिक्षकों की समझदारी, ईमानदारी, उनकी पेशेवर कर्मठता लोगों के सामने आई है।

जब साथी शिक्षक सवाल करते है कि आपके स्कूल में टेस्ट इतनी कम कुशलताओं पर क्यों लिया जा रहा है? इसका कहीं-न-कहीं जवाब देना पड़ेगा। जवाब दो कि हम इतना ही कर पाए, हम इसलिए इतना ही कर पाए, और दूसरे संकुल के लोग अगर ज़्यादा कर पाए ईमानदारी से, तब उसको सुनकर हम भी समझें और कहें कि अगली बार अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करेंगे।

कमलेश : स्कूल की व्यवस्थाएँ कैसी हैं; शिक्षक की क्या व्यस्तताएँ हैं; और उसके पास क्या काम हैं? यह सब भी सोचना होगा। सिर्फ़ यही नहीं है कि कर पाए या नहीं कर पाए।

रश्मि : पेपर डाइट से बनकर आएँ, या स्कूल के चार-पाँच शिक्षक मिलकर बनाएँ, व्यवस्था वही है, पर लक्ष्य अलग हो जाता है, प्रक्रिया अलग हो जाती है। आसपास के चार-पाँच स्कूलों के शिक्षक एक दूसरे के बारे में ज़्यादा गहरी जानकारी रखते हैं। वे एक दूसरे को कहीं ज़्यादा चेक कर पाएँगे, बनिस्बत ज़िला स्तर पर किसी अधिकारी के। शिक्षकों की ताक़त से पढ़ने-पढ़ाने के पूरे पैराडाइम को ज़मीन पर बदला जा सकता है, यह करके देखना और दिखाना हमारा मुख्य योगदान रहा। उसमें एक एनजीओ की अपनी भूमिका थी, लेकिन वह बहुत सीमित थी, क्योंकि उसके रोज़मर्रा के क्रियान्वयन का भार शिक्षकों पर ही था। व्यवस्था के स्तर पर यह एकमुश्त हर जगह लागू नहीं हो सकता। जैसे, मानो जंगल है, और आपको कहा कि यह खेती करने के तरीक़े का मॉडयूल है, बीज दे दिए अब वहाँ खेती फैलाओ। खेती फैल जाएगी क्या?

पहले ज़मीन तैयार करनी होगी। खरपतवार हटाना, जंगल साफ़ करना, बीज बोना, देखभाल करना, चप्पे-चप्पे पर करना पड़ेगा। जैसे एक जगह की इकोलॉजी बदलती है वैसे ही कोई एक सांस्कृतिक परिवर्तन है। जैसे खेती का फैलना पारिस्थितिकी परिवर्तन हुआ, वैसे ही सांस्कृतिक परिवर्तन है शिक्षा में नवाचार का होना। इसको हर जगह जड़ जमाना होगा, उगना होगा, और उसके लिए आपको हर जगह वह बीज रोपित करके उसको उगने देने का मौक़ा देना होगा। इसके लिए शिक्षकों के समूह बनाना, उनका स्वायत्त रूप से, रचनात्मक रूप से क्रियाशील होना, और जवाबदारी उठाना व जवाबदारी पाना कि आप यह कर सकते हैं, यह एक बेहद आवश्यक और वाज़िब क़दम है, कारगर है, ये होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में एकलव्य ने दिखाया है।

कमलेश : सरकार में डाइट, सीआरसी जैसी व्यवस्थाएँ पहले तो सूचनाओं के आदान-प्रदान के सेंटर की तरह ही बनकर रह गई थीं, अब और नीचे चली गईं। कई जगह सब सीआरसी वापस बुला लिए गए हैं। इसे आप कैसे देखती हैं?

रश्मि : इस आयाम पर बहुत कम काम किया गया है। कभी किसी ने थोड़ी कोशिश की होगी। जैसे हमने एक बार ब्लॉक लेवल प्रोजेक्ट में कोशिश की। इसको प्राथमिकता नहीं मिलती है। बच्चों का लर्निंग लेवल, उसकी समस्या के साथ जूझना, शिक्षकों की कैपेसिटी

बिल्डिंग, अपने कार्यकर्ताओं की कैपेसिटी बिल्डिंग, सारी चीज़ों के बाद जाकर यह आता है कि बीआरसी, सीआरसी के साथ भी काम किया जाए। जो थोड़ा प्रयास किया, वह यही इंगित करता है कि यह बेहद मुश्किल काम है, क्योंकि इन लोगों की रोज़ की दिनचर्या क्या होगी; यह कहाँ जाएँगे; किसमें कितना समय लगेगा; सबकुछ अनिश्चित होता है। एक बार हमने उनके साथ कोऑर्डिनेट करने का सोचा था कि हम अपने स्टाफ़ के लोगों को एक-एक सीआरसी के साथ पेअर-अप कर देंगे। हफ़्ते-भर वह जो कुछ भी करता है, हमारा ऑफ़िस का स्टाफ़ भी उनके साथ जाकर देखे, समझे, सीखे, और तब हम समीक्षा करेंगे कि उनके काम की परिस्थितियाँ क्या हैं; और उनमें क्या मदद व समर्थन किया जाए। ऐसा कुछ सम्भव ही नहीं हो पाया। आज का प्रोग्राम, कहाँ जाना है, यह सबकुछ इतना अनिश्चित होता था कि वह कभी हमारे साथ बात ही नहीं कर पाते थे। उनकी बैठक भी अनिश्चित थी। कब हो जाएगी, कितने घण्टे की होगी, साफ़ नहीं था। तो यह प्रयास कहीं आगे बढ़ नहीं पाया। इसलिए फिर शिक्षकों के साथ काम का ओवरऑल रास्ता ही अपनाने की कोशिश हुई। यह भी लगता है कि अगर इसमें कोई सम्भावना ही नहीं है, तब क्यों इसके पीछे पड़ें। और जो काम यह करते हैं अगर वह एक आवश्यक कार्य है, तब सरकार करवाएगी और यह करेंगे ही। इसलिए उसमें बाधा डालने या घुसपैठ करने की कोई ज़रूरत ही नहीं, क्योंकि न उनका काम होगा न आपका। सच में, इसके बारे में ज़्यादा कुछ नहीं कह सकते।

जब हम किसी और के अनुभव को सुनते हैं, हमें कुछ महसूस होता है। वह कहीं हमारे मन को छूता है, मन को प्रेरणा दे सकता है। लेकिन हमारे पास सुनाने का अपना ख़ुद का अनुभव है ही नहीं। हम कब तक जॉन होल्ट, नील या *मेरी ग्रामीण शाला की डायरी* के पन्ने पढ़वाते रहेंगे। वह जितने भी जीवन्त हों, हैं किसी और के ही। ख़ुद का पढ़ने-पढ़ाने का अनुभव गढ़ना ज़रूरी है।

शिक्षकों की मेंटोरशिप प्रक्रिया के लिए पैरेललली कुछ करने की कोशिश ज़रूर की जा सकती है। मसलन, अगर हर ब्लॉक या क्लस्टर में ऐसे शिक्षक जो अनुभव रखते हैं, और जिनमें अपने काम को, अपने पेशे को लेकर कोई अभिप्रेरणा है, ऐसे शिक्षकों को पहचानते हुए क्या उनको कुछ ज़्यादा स्वायत्तता और ज़िम्मेदारी अन्य शिक्षकों के सम्बन्ध में देने की कोई पेशकश की जा सकती है; क्या उनकी कोई भूमिका नहीं बनाई जा सकती है; इन बातों पर भी मैंने कई बार विचार किया है। साथियों के साथ भी बात होती है। और दुर्भाग्य के साथ कहूँ, मैंने यह पाया कि ऐसे शिक्षक हैं जो इसमें पहल नहीं करना चाहते। उनको लगता है कि अगर अपने दूसरे शिक्षक साथियों को कुछ कहना पड़े, या उनको कुछ प्रयास के लिए आगे करना पड़े, तब उनके ऊपर बात आएगी, उनकी बुराई होगी या उनके साथ मनमुटाव होगा, और निकलेगा कुछ नहीं। एक तरह की मायूसी तो है तंत्र के अन्दर कि अकादमिक स्तर पर शिक्षकों का अनुसमर्थन करने का कोई रास्ता दिख नहीं रहा, बन नहीं पा रहा।

कमलेश : स्कूल में शिक्षक के साथ काम करने में हमें किन बातों का ध्यान रखने की ज़रूरत है? आपके अनुसार इनके साथ मिलकर बेहतर काम कैसे किया जा सकता है?

रश्मि : इस मसले पर काफ़ी उधेड़बुन रहती है। अभी दो सुझाव मेरे मन में उभर रहे हैं। मैं नहीं कह सकती कि वह कारगर होंगे, पर एक ज़रूरत के रूप में वह महसूस होते हैं। एक यह कि मान लीजिए हमारी संस्था या आपकी संस्था के कार्यकर्ता हैं। ख़ुद को भी मैं इसमें शामिल कर लेती हूँ। शुरू के समय में, जब

हम पाठ्यचर्या का ट्रायआउट कर रहे थे, हम रोज़ स्कूल में जाकर पढ़ाते थे, शिक्षकों को पढ़ाता देखते थे, और क्या फ़ीडबैक लेना है, क्या परिवर्तन करना है, यह सोचते थे। उसके बाद हम अनुसमर्थन वाले रोल में आ जाते हैं। इसमें हम ख़ुद पढ़ा नहीं रहे होते हैं, कहीं मुझे इसकी कमी महसूस होती है। मुझे लगता है कि संस्था के कार्यकर्ताओं को नियमित ज़िम्मेदारी के साथ कुछ शिक्षण कार्यभार सँभालना चाहिए। जैसे, अपने ख़ुद के शिक्षण अनुभव में वृद्धि करना। शिक्षक के ज्ञान, शिक्षक की कुशलता, सुगमता, परिस्थितियों को लेकर उसकी पकड़, इन सभी की हमारी समझ समय के साथ बनती है। वह कुछ समय के लिए सामग्री ट्रायआउट करके नहीं बनती। एक शिक्षक का काम है, इतने बच्चों के साथ, सार्थक, सकारात्मक रूप से कुछ कर पाना और उनके विकास में सहयोग करना। वह भी रोज़-रोज़ और काफ़ी अनिश्चितता के साथ। शिक्षक विकास के शोध में यह बात सामने आती है कि एक शिक्षक को रोज़ अकेले होकर, अपने स्तर पर इतनी विविध परिस्थितियों (एक-एक बच्चा अपने-आप में पूरी-पूरी दुनिया लेकर आता है, और शिक्षक की अपने घर की, स्कूल की परिस्थितियाँ होती हैं) के बीच रोज़ समुचित शिक्षण का वातावरण पैदा करना चुनौती है। यह ज़िम्मेदारी और चुनौती हम में से शायद ही कोई लोग उठाते हैं, और निभाते हैं। जब हम ख़ुद उस चुनौती को नहीं उठाते, हमारे अपने ज्ञान की वृद्धि अवरुद्ध होती है। हमको सामग्री का, विषयवस्तु का ज्ञान होता है, और यह परिष्कृत से परिष्कृत होता जाता है। लेकिन शिक्षकीय पेशे का हमारा ज्ञान अविकसित रहता है। अगर हम शिक्षकीय पेशे के विकास में योगदान देना चाह रहे हैं, तब शिक्षक के पेशे का हमारा ज्ञान अपने निजी लेवल पर काफ़ी उत्कृष्ट स्तर पर पहुँचाने की कोशिश होनी चाहिए। उसकी व्यवस्था कर पाने में एक कमी लगती है।

दूसरा, मैंने शुरू में चिन्तनशील शिक्षक के बारे में बात की, और यह भी कि जब हम किसी और के अनुभव को सुनते हैं, हमें कुछ महसूस होता है। वह कहीं हमारे मन को छूता है, मन को प्रेरणा दे सकता है। लेकिन हमारे पास सुनाने का अपना ख़ुद का अनुभव है ही नहीं। हम कब तक जॉन होल्ट, नील, मार्गरेट मीड या *मेरी ग्रामीण शाला की डायरी* के और यहाँ-वहाँ के पन्ने पढ़वाते रहेंगे। वह जितने भी जीवन्त हों, हैं किसी और के ही। ख़ुद का पढ़ने-पढ़ाने का अनुभव गढ़ना ज़रूरी है। जैसे, एक बच्ची का उदाहरण मैं दे रही थी। भाग पढ़ाने के लिए मेरे मन में क्या उधेड़बुन आई; बच्चों के अनुशासन को लेकर मैंने किस स्थिति का सामना किया; या कैसे मैंने उसको हल किया; यह चिन्तनशील शिक्षक की मेरी अपनी कोशिश है। जब मैं इसको सामने रख पाऊँगी, तब दूसरे शिक्षकों के साथ एक सांस्कृतिक-भावनात्मक सम्बन्ध, आदान-प्रदान की गुंजाइश बनती है।

जब मेरे पास ही अनुभव नहीं है, और मैं दूसरी किताबों के पन्ने पढ़वा रही हूँ, यह मेरी कमी है। मुझे इस कमी को दूर करना चाहिए। चिन्तनशील शिक्षक की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए भी ज़रूरी है कि हमारा अपना भी चिन्तनशील शिक्षक का ज्ञान बनता रहे, बढ़ता रहे। हमारी संस्थाओं को स्कूल में पढ़ाने से फ़ायदा, और अच्छे तरीक़ों को फैलाने के दबाव का पुनरावलोकन करना चाहिए। हमारा लक्ष्य क्या था; क्या हम वहाँ तक पहुँच रहे हैं? और अब आप जैसे कह रहे हो, हम इनपुट गिविंग मोड में आ जाते हैं, तब वहाँ नहीं पहुँच पाते। जब उतना हम हासिल नहीं कर पाए तो रीलुक करो, चिन्तनशील एजुकेटर बनो, और अपनी स्ट्रेटजी पर पुनर्विचार करो। एक चिन्तनशील शिक्षक से यही अपेक्षित है न कि वह अपनी स्ट्रेटजी पर पुनर्विचार करे। फिर एजुकेटर को भी अपनी स्ट्रेटजी पर पुनर्विचार करना चाहिए, तभी हम एक चिन्तनशील एजुकेटर के रूप में काम करेंगे।

कमलेश : शिक्षण का ज्ञान बढ़ाएँ, और अपना ख़ुद का चिन्तन करें। लेकिन शिक्षक के साथ मिलकर काम करना है उसको कैसे गति मिले?

रश्मि : एक शिक्षक के साथ काम करने में हमारा शिक्षक के काम के बारे में ज्ञान ही उनसे कम्युनिकेट करने के लायक़ बनाएगा, तभी साथी शिक्षकों के साथ हमारा आदान-प्रदान ज़्यादा सफल हो पाएगा। मैं जानना चाहती थी कि स्व-आकलन के कुछ प्रारूप क्या किसी ने ट्रायआउट किए हैं। शिक्षक ख़ुद के आकलन के कुछ बिन्दु मिलकर तय करें। जैसे– वे अपने काम का आकलन किन बिन्दुओं पर करना चाहते हैं; किस अवधि में कौन-सी चीज़ कर पाए; क्या उपलब्धि रही; किन बातों में असफल रहे व क्यों; आदि। ऐसा कुछ प्रयोग से हम सीख सकते हैं, और उसे अपना सकते हैं। इसका हमें पता लगाना चाहिए। मुझे इस बारे में कम जानकारी है, इसलिए पूछ रही थी कि वैकल्पिक स्कूल, या जो प्रगतिशील विचारधारा वाले स्कूल हैं वहाँ से पता लगे कि वहाँ शिक्षकों के स्व-आकलन या सहपाठी आकलन की प्रक्रिया कैसे करते हैं।

जब मेरे पास ही अनुभव नहीं है, और मैं दूसरी किताबों के पन्ने पढ़वा रही हूँ, यह मेरी कमी है। मुझे इस कमी को दूर करना चाहिए। चिन्तनशील शिक्षक की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए भी ज़रूरी है कि हमारा अपना भी चिन्तनशील शिक्षक का ज्ञान बनता रहे, बढ़ता रहे।

शिक्षकों के साथ काम करते हुए मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कुछ लोग शिक्षक समूह में जुड़ते हैं, और फिर अपना काम करना शुरू करते हैं। लेकिन कभी कुछ शिक्षक कुछ शुरुआत करते हैं, और फिर पीछे हट जाते हैं। इसके पीछे कोई भी कारण हो सकता है। मसलन, पारिवारिक कारण, प्रेरणा की कमी, या और कुछ भी।

लेकिन एक बात ज़रूर है कि अगर सामने कोई लक्ष्य है, और एक समूह मिलकर उसको हासिल कर रहा है, किसी एक चीज़ को संचालित कर रहा है, उससे भी एक फ़ैसिलिटेटिंग सिचुएशन बनी रहती है कि आप लगातार क्रियाशील रहें, और अपना योगदान देते रहें। अगर कहीं ऐसा नहीं है, और आप बिलकुल अपने ऊपर हैं कि कितना किया, क्या नहीं किया, फिर आपका मनोबल, आपकी प्रेरणा भी थोड़ी कम हो सकती है।

कमलेश : स्व-मूल्यांकन कैसे हो सकता है?

रश्मि : 15 दिन या महीने में, पाँच स्कूलों के शिक्षक मिलकर अपने-अपने स्व-मूल्यांकन प्रपत्रों को भरते हैं। वे आपस में एक दूसरे को दिखाते हैं, और इस प्रक्रिया के लगातार होने से लक्ष्य पूर्णता रहती है। मेरे में इन चीज़ों की कमी रही थी। मैं देखती हूँ इस बार कैसा रहेगा, वह क्या कहता है मेरे काम के बारे में। मैं अपने काम के बारे में यह बताऊँगी, या अपनी समस्या को सामने रखूँगी। मतलब, कहीं एक प्रक्रिया बनती है जिसमें आप भागीदार हैं। आप कहीं-न-कहीं कोशिश कर रही हैं। ऐसी प्रक्रिया का बना रहना, एक सांस्कृतिक प्रक्रिया का बना रहना, आपकी लक्ष्य पूर्णता बनाए रख सकता है। लेकिन तब भी कोई गारंटी नहीं है, क्योंकि उतार-चढ़ाव सबके साथ ज़िन्दगी में होता है, आपसी मनमुटाव हो सकता है। आप आहत हुए किसी बात से, आपकी गरिमा को चोट लगी, आप कहना ही न चाहें उस बात को खुलकर, बस आप अलग हो जाना चाहते हैं, तब ऐसी बात का पता लगाना, उसको सुलझाना बहुत कठिन काम है। हम परिवार में ही देखते हैं। अपने घर के अन्दर हो जाता है। कई बार संवाद ही रुक जाता है। यह मानवीय प्रक्रियाएँ हैं। इनको रूलआउट कभी नहीं कर सकते। इनको साथ लेकर चलना पड़ता है।

कमलेश : शिक्षकों में पढ़ने की आदत का विकास कैसे किया जाए?

रश्मि : एक लाइब्रेरी बना देना बहुत सफल नहीं होता। कुछ विरले शिक्षक होते होंगे जो ख़ुद

से आकर वहाँ से कुछ लेकर जाएँ। लेकिन ऐसे कुछ शिक्षक हैं भी। हम शिक्षकों के बीच सामग्री (झोला पुस्तकालय) ले गए, और वहाँ उनको कहा कि इनमें से कुछ किताब ले लो। लेकिन एक महीने बाद पूछो तो वे बिना पढ़े वापस ही कर देते हैं। यह भी एक एकाकी प्रक्रिया हो जाती है। तीसरा प्रयास हमने किया कि सिर्फ़ किताब बाँटकर नहीं आएँगे। लंच टाइम पर चाहे दो पन्ने पढ़ें, दो पैराग्राफ़ पढ़ें, वहीं बैठकर पढ़ेंगे, ताकि थोड़ा स्वाद आए, तब वह पढ़ने के लिए अग्रसर हो सकेंगे। वे सभी तरह के प्रयास करने पड़ेंगे जो हमको सूझते हैं।

कमलेश : इसमें आपको ऐसा भी लगता है कि शिक्षक जिस माहौल से आते हैं वहाँ उन्होंने, माने कॉलेज में या स्कूल में, क्या पढ़ा?

रश्मि : यह सिर्फ़ शिक्षकों की बात नहीं है। हम अपनी संस्था में भी देखें कि सभी पढ़ने में बराबर की रुचि नहीं रखते हैं। काम के दबाव को कुछ लोग एक तरह से हैंडल कर पाते हैं, कुछ नहीं कर पाते। उस दबाव में पढ़ने का समय और रुचि बनाए रखना किसी के लिए सम्भव होता है किसी के लिए नहीं। इसको हम एक लक्ष्य के रूप में नहीं रख सकते हैं, और जो बीते समय में उनके कॉलेज में, या परिवार में हुआ हो, वह तो हो चुका उसका आज क्या करना!

कमलेश : मेरा प्रश्न यह है कि यदि रुचि ही नहीं बनी, तो क्या बाद में रुचि विकसित हो सकती है?

रश्मि : इसका जवाब हाँ में ही देना पड़ेगा, क्योंकि यह ऐसा सवाल है जिसका जवाब नैतिक रूप से 'नहीं' में नहीं दिया जा सकता। यह उम्मीद हरेक के लिए बनी रह सकती है। आप सम्भावना को ख़ारिज नहीं कर सकते।

कमलेश : शिक्षक जो लिखकर देते हैं उसको टाइप करके दिखाने पर उनको बड़ी ख़ुशी मिलती है कि उन्होंने जो लिखा है उसे कोई पढ़ रहा है।

रश्मि : और भी तरीक़े निकालने चाहिए। जैसे आप नई तकनीक की बात कर रहे थे। एक तो वह व्हाट्सऐप पर शेयर करना और उसे लाइक करना। मुझे इतना अनुभव नहीं है कि कैसे चलता है। ऐसे ही और तरीक़े भी निकलते रहने चाहिए जिसमें उनका अपना कंट्रीब्यूशन दिखे।

कमलेश : बच्चों के लेखन आदि से सम्बन्धित काफ़ी सारे वीडियो भी शिक्षक साझा करते हैं। चयनित सामग्री को हम इकट्ठा भी करते हैं।

रश्मि : इस सामग्री में थोड़ा दोहराव भी आने लग सकता है कि वही बात बार-बार हो रही है। इस बारे में सोचते रहना पड़ेगा। इसपर कोई समाचार बनाने का भी सोच सकते हो। मसलन, स्कूलों के समाचार, कि क्या-क्या प्रमुख चीज़ें हुईं, कहाँ-कहाँ पर क्या-क्या हुआ, आदि।

कमलेश : अन्त में शिक्षकों के विकास के बारे में कुछ और कहना चाहती हों?

रश्मि : हम सिर्फ़ इस दृष्टि से देख रहे हैं कि हम ख़ुद क्या कर सकते हैं; या क्या करते हैं; उसकी क्या भूमिका रही है। लेकिन मैंने इस बात पर ग़ौर किया कि जब हम शिक्षक की तैयारी के लिए कोर्स (बीएड, एमएड) बनाते हैं, तब एक बड़ा सवाल यह होता है कि उसमें क्या हो, और उसकी सामग्री कहाँ से आए। क्योंकि जो सैद्धान्तिक पढ़ाई प्री-सर्विस टीचर एजुकेशन में होती है वह एक तरफ़ पड़ी रहती है। जब शिक्षक स्कूल में पहुँचता है, वह अपने पुराने प्रतिबिम्ब, छवियों, ज्ञान के स्रोत से अपने काम को संचालित करने लगता है। क्या हम शिक्षकों के साथ साक्षात्कार करके उनकी कक्षा का अवलोकन करने के पश्चात उनसे बातचीत करके, कि उन्होंने क्या-क्या बहुत अच्छा किया; उनका आत्म-अवलोकन क्या है; उन्होंने कोई क़दम क्यों उठाया था; कोई रणनीति क्यों अपनाई थी; उनके दृष्टिकोण को समझकर,

उसको अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें मौक़ा देकर, और उसे दर्ज करके शिक्षक शिक्षा के लिए सामग्री का निर्माण कर सकते हैं? इससे शिक्षक के लिए ज्ञान का दस्तावेज़ीकरण हो सकेगा, उसको संकलित करने की सम्भावना बन सकेगी जोकि अभी बहुत हद तक ग़ायब है। शिक्षक के ज्ञान का मुद्दा इसलिए उठ रहा है कि शिक्षक शिक्षा के लोग इस दुविधा में हैं कि शिक्षक का ज्ञान होता क्या है। वह विषयवस्तु का ज्ञान पढ़ा सकते हैं, वह मनोविज्ञान के शोध का ज्ञान पढ़ा सकते हैं, लेकिन शिक्षक के पेशे का ज्ञान क्या है; एक रोज़मर्रा के शिक्षक के पेशे का ज्ञान क्या है; इसको पकड़ पाना और संकलित कर पाना ही मुश्किल साबित हुआ है। नए शिक्षकों को शिक्षित करने के लिए यह जो सामग्री आपको वास्तव में चाहिए, वह बहुत अविकसित है। अब क्या उस सामग्री को बनाने में यह संस्थाएँ कुछ मदद कर सकती हैं, यह एक सवाल है।

क्या हम शिक्षकों के साथ साक्षात्कार करके उनकी कक्षा का अवलोकन करने के पश्चात उनसे बातचीत करके, कि उन्होंने क्या-क्या बहुत अच्छा किया; उनका आत्म-अवलोकन क्या है; उन्होंने कोई क़दम क्यों उठाया था; कोई रणनीति क्यों अपनाई थी; उनके दृष्टिकोण को समझकर, उसको अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें मौक़ा देकर, और उसे दर्ज करके शिक्षक शिक्षा के लिए सामग्री का निर्माण कर सकते हैं?

कमलेश : स्वैच्छिक मंचों के साथ किए काम का कुछ अनुभव बताएँ।

रश्मि : हमने शिक्षकों के मंच 2001 से बनाने शुरू किए थे, जब यह स्पष्ट हो रहा था कि शासन के साथ हम अपने पाठ्यक्रमों को बहुत आगे तक नहीं फैला पाएँगे। हमने विकल्पों के बारे में सोचा, ताकि हम शिक्षकों के साथ पाठ्यक्रम पर, पढ़ने के तरीक़ों पर, अपने वार्तालाप को आगे बढ़ा सकें। तब से अब तक एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मंच बदलते रहे, बिगड़ते रहे, नए बनते रहे, लेकिन वह विचार अभी तक जीवित है। न सिर्फ़ एकलव्य के अन्दर ऐसे प्रयास अभी भी जारी हैं, पर अन्य संस्थाओं, अन्य राज्यों में भी ऐसे प्रयास किए गए हैं। हो सकता है ये अपने-आप से भी किए गए हों, या आदान-प्रदान भी हुआ हो। मैं कहूँगी कि यह अपने-आप में एक ऐसा बीज है जो कारगर साबित हुआ। यह एक ऐसी ज़रूरत है जिसकी भरपाई ऐसे मंचों के निर्माण से की जा सकी। पर इसका आकलन करना हमेशा बहुत मुश्किल रहा। हमपर भी काफ़ी दबाव था कि अगर स्वैच्छिक शिक्षकों के मंच बनाना आपका एक प्रमुख कार्यक्रम है, तब इसका आकलन कीजिए। इसका बच्चों के सीखने पर, शिक्षक के पढ़ाने के तरीक़े पर क्या असर पड़ रहा है, इसको प्रमाणित कीजिए। हमने प्रयास किया। शिक्षकों की कक्षाओं के लम्बे-लम्बे अवलोकन लिखे और ट्रांसक्राइब किए जाते थे, ताकि आप दो शिक्षकों की कक्षाओं में फ़र्क़ देखने की कोशिश कर सकें। और समीक्षात्मक दृष्टि से देखने पर आपको फ़र्क़ दिख जाएगा कि हाँ, यह बच्चों से अच्छे से बात कर रहे हैं, उनके अनुभव को शामिल करने की कोशिश कर रहे हैं, बच्चों को कुछ सक्रिय रख रहे हैं, उदाहरण दे रहे हैं, प्रश्न पूछ रहे हैं, कुछ गतिविधि करवा दे रहे हैं। यह कई जगहों पर दिखेगा कई जगहों पर नहीं भी दिखेगा। हमने काफ़ी सोच-विचार भी किया कि क्या वास्तव में यह प्रमाणित किया जा सकता है? ऐसा मूल्यांकन करना उचित है भी कि नहीं, क्योंकि दरअसल स्वैच्छिक मंच में शिक्षक की भागीदारी की जो इंटेंसिटी है, सघनता है, वह बहुत कम है।

हर महीने में एक दिन किसी रविवार को यदि शिक्षक अपने कार्यालय पर आए, तब बैठकर हमने चर्चा की, उसकी सघनता इतनी ही होती थी। उसमें भी एक बैठक में कुछ 10-

12 शिक्षक आए, अगले महीने की बैठक में इनमें से 6 आए। माने, नियमितता भी कम थी और सघनता भी काफ़ी कम। आप देख सकते हैं कि क्या हासिल हो रहा था। अभी भी वही सवाल है। मुझे लगता है कि जितनी सुविधा किसी के पास निजी स्तर पर है, जब वह आ सके, आ सकता है, और एक सांस्कृतिक प्रक्रिया में अपना योगदान दे सकता है। हिस्सेदारी में जो एक भावनात्मक जुड़ाव है उसे महसूस कर सकता है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण चीज़ है। लीडरशिप को इमर्ज करने, कोई नए क़दम को आगे पुश करने के लिए ऐसे भावनात्मक जुड़ाव वाले समूहों के बीज बन रहे हैं, यह बहुत ज़रूरी चीज़ है। कब स्थिति इसकी सम्भावना पैदा करती है, यह आप नहीं जानते, नहीं कह सकते, वह आपके हाथ में नहीं है। लेकिन जब वह सम्भावना पैदा होगी, यह समूह पहले से विकसित, पहले से जुड़े हुए, पहले से आपस में एकजुट हुए उपलब्ध होंगे जो उस काम को अंजाम दे पाएँगे। ऐसी उम्मीद के साथ यह जैसा चल पा रहा है उतना चलता रहे, और इसमें सुधार और समृद्धि की कोशिश होती रहे। यह भी एक कारगर उद्देश्य दिखाई देता है। हालाँकि, आप इसका आकलन करके प्रमाणित नहीं कर सकते कि इसका यह असर हो गया। लेकिन अगर हम सांस्कृतिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य से इस काम को देखते है, हम अपने नज़रिए को एक आशावादी नज़रिया बनाकर रख पाते हैं।

कमलेश : बहुत शुक्रिया।

रश्मि पालीवाल एकलव्य संस्था में 1982 से जुड़ी हुई हैं। सामाजिक अध्ययन शिक्षण के क्षेत्र में प्रमुख रूप से काम किया है। एकलव्य के प्रकाशनों के सम्पादन में सहयोग करती हैं। ज़मीनी स्तर पर प्राथमिक शिक्षा में सुधार की परियोजनाओं को लागू करने व उनका अध्ययन करने के प्रयासों से जुड़ी हुई हैं। 'बाल विकास विशेष ज़रूरतें और सीखना' नाम के सर्टिफ़िकेट कोर्स के संचालन से भी जुड़ी हैं।

सम्पर्क : paliwal_rashmi@yahoo.com

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों– शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।

सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org